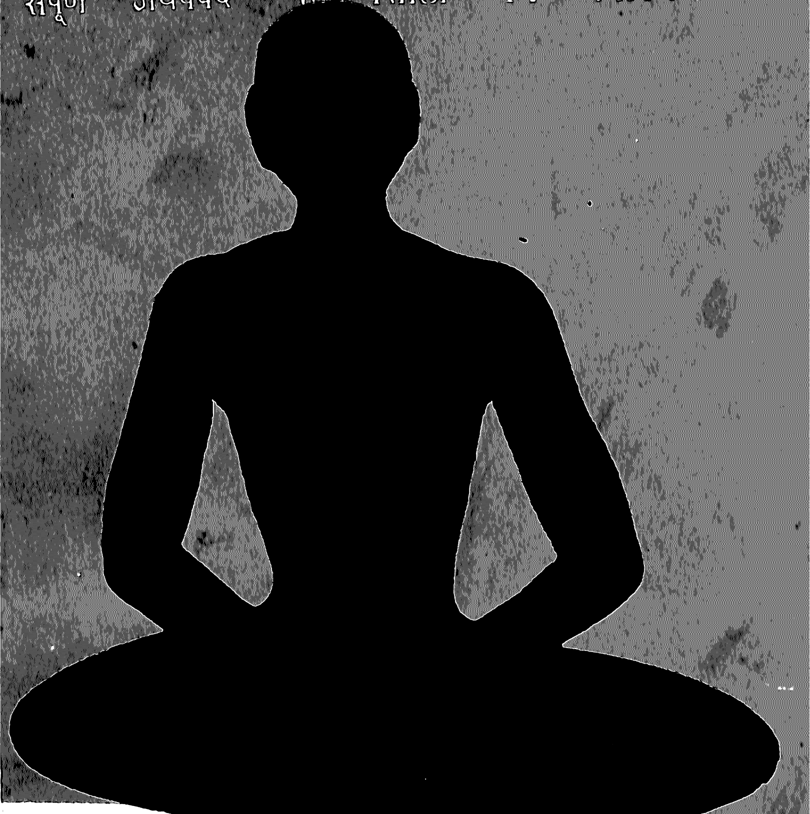
संपूर्ण अथर्ववेद : सामर्थ्यशाली मंत्र वर्गीकरण



अथर्व वेद

विवेचन - स्वामी विज्ञानानंद

अथर्ववेद

संकल्प सिद्धि

मंत्र विवेचन

सर्वाधिकारः न्यू वे प्रेयर एडस्। प्रकाशक आ. रा. हातीसकर (ऑ. सेक्रेटरी) 'न्यू वे प्रेयर एडस्', बंबई–पूना रोड, लोणावळा, सेंट्रल रेल्वे। मुद्रक: तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी। मूल्य: रु. ३ प्रथमावृत्ति: १९६४.

For the benefit of Seekers unable to go through the text

Acharya Vinoba Bhave asserts, (page 131 'Deeksha') ''Many claim from the very old days that if Vedas are subjected to interpretation their power gets weakened. The dialectics survives up to date.''

(1) By 8 a.m. place your palm flat on the treatise incorporating the Mantras. Aver, ''I honour the laws of Mantras. So I shall be rewarded. I am being rewarded.''

(2) Meditate upon the expositor of the Veda-Mantras.

(3) The back cover displays the violet-like mistful monogram. Attempt concentration on its central point. Leap into serene, restful moments.

(3) Should you feel inclind to put service the power of prayer, send a self-addressed envelope 8 inches X 6 inches and stamps worth 25 nP., separately. The New Way Prayer Aids will despatch back the endowing, rational prayer-procedure.

अथर्ववेद के सामर्थ्यशाली मन्त्र

संकल्पसिद्धि : विवेचन

अथर्ववेद की सामर्थ्य

बुद्धिवादी लोग अथर्ववेद की कड़ी आलोचना करते हैं, और उसमें एक दृष्टि से थोड़ा तथ्य भी है। उसके माने यह नहीं है कि अथर्ववेद में कुछ सामर्थ्य नहीं है। उसकी कमजोरी पर कुछ स्वार्थी लोग बल देते हैं और उसीके फलस्वरूप आलोचकों को कलई पकड़ने का अवसर प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, अथर्ववेद में जारण-मारण पर अनेक मन्त्र हैं। ये मन्त्र पैसे कमाने का साधन बन गया। धोखा खाये हुये बढ़ने लगे। उपचार करा-लेनेवाले तो अपूर्ण और पापग्रस्त थे ही। लेकिन उपचार करनेवाले भी जब पाप का अवलंब करने लगे तो जागृत मंत्रकी भी पलकें झपकने लगीं, इसमें आश्चर्य कहाँ ? यदि इसमें हम कुछ परिवर्तन चाहते हैं तो अथर्व-वेद के अभिमानियों का ऐकान्तिक हठवाद कुछ काम न आयेगा। अथर्ववेद की सामर्थ्य, उसके कमजोर स्थानों से अलग कर समाज के सामने रखने का धैर्य यदि सनातनी बतायेंगे तो ही यह उनकी प्रिय वस्तु टिकेगी अन्यथा यह आर्यावर्त का पुराण-पुरुष, नष्ट होगा सो बात नहीं, लेकिन बदनाम अवश्य होता रहेगा।

लेकिन इसका अर्थ कोई ऐसा न समझे कि इस चक्र से छुटकारा पाने के लिए अपना पूर्वपीठ सस्ता करा दें। बुद्धिवादी दृष्टिकोण लेकर अथर्ववेद के विचार आगे बढ़ाने के लिए अनुवाद कहाँ तक सहायता दे सकता है इसका विचार प्रथम किया जाना चाहिए। पुराने ऋषिमहर्षियों की गवाही यदि हम भरेंगे तो झुकाव स्पष्ट ही है। कुछ अभ्यासक ही वेदों

को जतन करें। किसी ऐरे गैरे जिज्ञासु के हाथ उनको सौंप न दें, यही था तत्कालीन लोगों का मत! सामान्य लोगों से उसको दूर रखने की यह दृष्टि ग्राजकल के प्रजातन्त्र के युग में गौरव नहीं पा सकती। लेकिन ध्यान में रखे कि 'सामान्य'-पन का सम्बन्ध गरीबी–श्रीमंती से कोई जोड़ता न था। ब्राह्मण-वर्ग धनी लोगों का न था। वह था अभ्यासकों का! वैदिककाल में ब्राह्मण का दूसरा नाम था अभ्यासक! आगे चलकर ब्राह्मणों की अपनी सामर्थ्य, अभ्यासु-वृत्ति, तपकर्मों पर की श्रद्धा डगमगाई, इसीसे कुछ अनर्थ आ पड़े। उसका दोष पूर्वजों के माथे मढ़ नहीं सकते। उस काल में क्षुद्रता का नाम न था। श्रीकृष्ण थे ग्वाला, राम क्षत्रिय, शंकर आदिवासी। फिर भी उनकी भक्ति विनम्र ब्राह्मणों ने ऊँची उठाई। अत्यन्त प्राचीन काल में भी ब्राह्मण्य का कोई ठेका नहीं दिया था। विश्वामित्र जैसा कारीगर प्रतिसृष्टि निर्माण करने की हिम्मत रख सकता था। गार्गी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मवाद खेलती थीं, अपनी परम्परा निर्माण कर सकती थीं। व्याध की जाति में जन्म पाकर और डकैती के स्तरपर का जीवन-यापन किये हुए वाल्मीकि को समाज में उच्च गुरुपद तक का स्थान मिल सकता था। इतना जाति निरपेक्ष सामरस्य समाज में था। ऐसी अवस्था में यदि "अभ्यासकों के लिए ज्ञान" यह बन्धन यदि होगा तो उसमें क्या हानि? आज भी यदि कोई मन्त्र का अर्थ समझ लेना चाहता है तो किसने संस्कृत की पढ़ाई पर ताले लगाये हैं? मॅक्समुल्लर, ग्रिफिथ, व्हिटने, ब्लूमफिल्ड इन परदेशी विद्वानों ने संस्कृत भाषा को अपनाया; इधर हिन्दुस्थान में संस्कृत से परिचय रखनेवालों ने भी उससे मुँह मोड़ लिया। वेदनिर्माता वेदों की प्रणाली खुले बाजार बिकना नहीं चाहते हैं, इसका ज्ञान कम से कम वेद के अभिमानी तो रखें।

अनुवाद क्यों नहीं चाहिये?

मैं इसका पक्षपाती नहीं हूँ कि पुराण-ग्रन्थों के अनुवाद ही न हों। ज्ञान समझ लेने के लिए अनुवाद की आवश्यकता मैं भी मानता हूँ। लेकिन

ज्ञान की भाषा श्रद्धा का जी घुटाती है। वेद में किसी ऋचा में कहा होता है—"हे इन्द्र, मुझे अमुक दो, अमुक दो!" इस वाक्य का जो अर्थ नहीं समझता है वह आदमी यदि सश्रद्ध होगा तो अर्थ न समझते हुए भी केवल ध्वनियों को सुन धीरज बंधाकर रह सकता है कि अपनी इच्छा पूरी होगी। चिकित्सक आदमी कहेगा, "क्या इन्द्र का अस्तित्व है? कहाँ रहते हैं श्रीमान जी? माँगा सो देंगे? और यह सच्चा कैसे माने?" इसके माने क्या है? मन्त्र का अर्थ खोलकर उस ज्ञान ने या उस अनुवाद ने क्या पाया? एक तत्त्ववेत्ता कहता है कि नया जमाने का दुर्भाग्य यह है कि वह पुराने श्रद्धास्थानों से हाथ धो बैठा है लेकिन नये श्रद्धास्थान निर्माण न कर सका। इस रिक्तता का कारण ज्ञान नहीं है; अधूरा ज्ञान ही इस रीतापन का कारण है। चिकित्सक मानव ज्ञान की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने के पहले हिम्मत हार बैठता है। जिन्हे न है धैर्य न सहनशीलता उन्हे चाहिए कि वे स्वयं आधे रास्ते पर खड़े होकर श्रद्धा के साथ खिलवाड़ न करें। ज्ञान पाकर उसका पूरा स्वीकार करें या उसे ठुकरायें। लेकिन भक्तिमन्दिर का विवाद-मंच बनाने से या उसका सस्ता खिलौना बनाने से किसी का कुछ फायदा नहीं।

अनुवाद से भक्ति सस्ती कैसे होती है, यह सवाल या तो अज्ञानजन्य है या जानबूझकर आँखोंमें धूल झोंकनेवाला! जिस वेदनिर्माताने ऋचा देखी है उसका अनुवाद करने से अजड विचारशक्ति में क्या बदल हो सकता है? इस प्रकार का कोई तर्क लड़ेगा! इस विधान के लिये यह दृष्टान्त भी मुँह पर फेंकेगा कि आम कहे या अँग्रेजी में 'मँगो' कहे जो दोनों भाषायें जानता है उसके मनमें एक ही संवेदना जागृत होगी। लेकिन इस दृष्टान्त में दोष है। मन्त्र इस पवित्र कल्पना का यह जड़वादी उपहास है। मिसाल के तौर पर लीजिये कि एक लड़का किसी दूसरे गाँव में पढ़ता है। वह किसी परीक्षा में शामिल हो रहा है। घर पर 'शुभाशीर्वाद' कहने पर उसे धैर्य आया होता। अपने छोटे लड़के के साथ यदि उनका सन्देश

मिला तो भी सन्देशवाहक रिश्तेदार है इसलिये मूल व्यक्ति की उत्कटता का अंशतः परिचय होगा ही ! लेकिन कल्पना कीजिये कि पिताजी ने शुभ-सन्देश का तार भेजा तो डाकिया 'शुभाशीर्वाद' शब्दों को जरूर पहुंचायेगा लेकिन वह भेजनेवाले की चेतना, प्रेरणा, ऊर्मि इनका वहन नहीं कर सकता। यदि कोई प्रतिवाद में पड़कर कहेंगे कि तार पढ़कर परीक्षार्थी का मन भर आयेगा और उसे धीरज प्राप्त होगा ही, तो हम कहेंगे कि आप साफ-साफ आत्मवंचना के जाल में फँस गये हैं। इस दृष्टान्त में लड़का पिताजी के प्यार का सम्पूर्ण विषय बन गया है यह गृहीतकृत्य समझा गया है। जहाँ मूल में यह श्रद्धा नहीं है वहाँ डाकिये जैसा काम करनेवाला अनुवादक स्फूर्तिकेन्द्र बन नहीं सकता। यही तो मूलभूत प्रमेय रहा !! इसलिये अथर्ववेद का अँग्रेजी या हिन्दी अनुवाद कर इस ग्रन्थ में समाविष्ट सीधी बात थी फिर भी मैंने मूलमन्त्र जैसे के वैसे ही रखे हैं। अनुवाद करना अनायास था, जिम्मेवारी से छूटना था। फिर भी आसान बात की ओर मैं न झुका। साधकों का हित निःसंशय अधिक महत्त्व का है ऐसा समझकर मैंने मन्त्रों के गुट-समूह स्वरूप में दिये और आनुषंगिक विवेचना करने का निर्णय लिया।

भक्ति और ज्ञान

भक्ति और ज्ञान इनमें झगड़ा निर्माण ही नहीं हो सकता; क्योंकि भक्ति बहुत ही ऊँची सीढ़ी पर बैठी है। यह नवतत्त्वज्ञान का नया मत या कुछ बदली हुई धारणा भी नहीं। स्पष्टीकरण के लिये इच्छापूर्ति : मन्त्र और तन्त्र इस पुस्तक के परिशिष्टमें '२३ ए' यह विवेचन लीजिये। भक्ति का अर्थ है, 'ईश्वर में अपने आपको सम्पूर्णतया, विशुद्धतया और तत्काल विलीन करा डालना ! (गॉड रीकन्सिडर्ड–प्र० ८–विवेचना) धीरे-धीरे, कण-कण से घुल जाने का समर्पण चाहे ज्ञान के क्षेत्र में मान्य हो सकता है लेकिन इस प्रकार की संख्या या क्रम की कल्पना भावना के क्षेत्र में

मान्य नहीं हो सकती। कोई जिज्ञासु भक्त इस प्रकार नहीं कह सकता कि "मैं ईश्वर पर आज से अधिक श्रद्धा कल रखूँगा।" शंकराचार्यजी ने न अपने वयका विचार किया न रूढ़ी का। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त होते ही उन्होंने आत्मार्पण कर दिया। गॉड रीकन्सिडर्ड के नौवे प्रकरण के दूसरे मद्दे में निर्देशित मर्यादा में भी विभिन्न धर्मों के नेताओं का समर्पण उसी प्रकार विशुद्ध रहा। यदि कोई समझेगा कि हम पूजा-प्रार्थना करते रहे, यथा समय ईश्वर उसका फल देगा; तो मानना होगा उसने कार्यकारण तत्त्व अथवा ज्ञान के नियमों को अपनाया है। भगवान् ज्ञानदेवजी के शब्दों में पानी में शक्कर घुल जाती है उसी प्रकार के आत्मार्पण को भक्ति कहते हैं। 'योग्य समय पर भगवान् देंगे' इस कथन में आप 'योग्य' शब्द से कार्यकारण भाव को मानते हैं और 'समय' शब्द से भगवान् को 'दिक्‌काल' की चौखट में बिठाते हैं। ये दोनों बातें २३ ई के अनुसार ज्ञानमार्ग होगा, पूरी भक्ति नहीं। पूरी भक्ति के विरोध में कौन खड़ा होगा?"

ज्ञान का मार्ग लम्बा है और एक दृष्टि से अपूर्ण भी! बुद्धिवादी यह मानते हैं; लेकिन उनका बिनीत भाव से कहना है कि जब कि मानव स्वयं अपूर्ण है उसका साधन भी अपूर्ण रहा! वह कबूल करता है कि श्रद्धा यह शंकाशून्य अवस्था है और उसे वह निभा नहीं सकता। ईश्वर पर जिसने पूरा भरोसा रखा है उसे चाहिये कि वह कम से कम विकाररहित तो रहे। इतना भी निभा न सकनेवाली दायित्वहीन श्रद्धा से ज्ञानमार्ग लम्बा है परन्तु सचाई का भी तो है। सारांश, बुद्धिवादी मनुष्य की चिकित्सा-वृत्ति भी एक दृष्टि से उसकी कमजोरी की निशानी है। सम्पूर्ण समर्पित भक्तों के बारे में उसका आदरभाव कुछ कम नहीं हो सकता। नारद भक्ति-सूत्र में भक्तों की व्याख्या की है—

अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः ॥१॥
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥२॥

अमृतस्वरूपा च ॥३॥
यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धों भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति ॥४॥
यत्प्राप्य न किंचिद्वांच्छति न शोचति न द्वेष्टि न
रमते नोत्साही भवति ॥५॥
यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवत्यात्मारामो भवति ॥६॥

(भक्ति परमेश्वर की ओर प्रेम प्रेरणा है। वह अमृतमय है और मोक्षमय है। उसके प्राप्त होने पर पुरुष सिद्ध होता है, तृप्त होता है। उसके बाद शोक, द्वेष या रमने की इच्छा इनसे उसकी लगन नहीं रहती। भक्ति के आनन्द में ही वह मस्त रहता है; स्तब्ध होता है। आत्मरंग में रंग जाता है।)

ऐसा भक्त किसी के आक्षेपों का खण्डन करने नहीं जाता। 'वादो नावलंब्यः।' (नारदभक्तिसूत्र ७४ अनन्तर ७५ वें सूत्र में नारदमुनि सूचित करते हैं, वाद से नियम दूर रहता है, अधिकांश में वैर ही बाकी रहता है।') इसलिए ऐसे तृप्त भक्तों के सामने नवतत्त्वज्ञान के अभ्यासक धर्म-कल्पनाओं की वास्तु अपने मूलस्वरूप में रखें। हो सके तो ऐसा विश्लेषण भी रखे जो धर्म कल्पनाओं को प्रमाण दे स्पष्ट करता है। ऐसा करना कोई चाञ्चल्य नहीं है। कारण वह धर्म के उन प्रमेयों को मजबूत बना रहा है जो सिद्ध हो सकें। बाकी प्रमेयों की चर्चा न करें। क्योंकि चाहे 'अंध' हो, लेकिन जिन्होंने 'पूरी श्रद्धा' अपनाई वे परस्पर विरोध (या negation of negation, two extremes meet) इस नियम के अनुसार वहीं पहुँचेंगे, जहाँ ज्ञानी पहुँचता है, अतः उसका समादर ही करना चाहिये। लेकिन जब कोई अधूरा श्रद्धवान् अपने श्रद्धापीठ पर पूरा निर्भर न रहकर बेईमानी करता है तब बुद्धिनिष्ठ आलोचक उसपर टूट पड़ता है। और वैसा होना भी चाहिये। क्योंकि यदि दो घड़ियाँ मेल न खाती हों तो हम समझ सकते हैं; लेकिन एक ही घड़ी में समय और टोले इनमें अन्तर हो तो विसंगति परमसीमा तक पहुँचती है।

मंत्रार्थ न समझने पर भी लाभ !

समर्पित, सत्य श्रद्धापर इस प्रकार मेरा आदर होने के कारण मैंने संपादन, विषय-वर्गीकरण और विवेचना करते समय उसका मूल-रूप वैसा ही रखने का आग्रह रखा है। पूरा अथर्ववेद अठारह काण्डों में विभाजित है। उन्नीसवाँ काण्ड पीछे से जोड़ा गया है ऐसा बहुतेरे विद्वान् मानते हैं। फिर भी उन्नीसवाँ काण्ड और उसके बाद की स्फुट प्रार्थनाओं का समावेश इस पुस्तक में हो सके उतना किया है। सम्पादन करते इसपर ध्यान दिया गया है कि साधक को मन्त्र विषय के अनुसार मिले। उदाहरण के लिये देखिये कि सङ्कल्प-सिद्धि के लिए जो प्रार्थना करना चाहता है उसको यह पुस्तक बड़ी सहायता देगी। 'कृषिवर्धन' के लिये जो वेदमन्त्र हैं वे दूसरी पुस्तक में इकट्ठा किये हैं। 'धनसत्ता' की चाह रखनेवालों को तीसरी पुस्तक उपयोगी ठहरेगी। आरोग्य को कमी है उन्हें चौथी पुस्तक—और इस प्रकार की आठ पुस्तकें ! इस प्रकार के वर्गीकरण से जिज्ञासु लोगों को फायदा होगा, जो संस्कृत जानते हैं उन्हें विषयानुसार मंत्र एक जगह ही मिलेंगे, और संस्कृत से परिचय न रखनेवाले श्रद्धावानों को लाभ होगा ही !

संस्कृत न समझते हुए भी मंत्र सफल कैसे हो सकते हैं, इस प्रश्न का उत्तर श्रद्धावानों के लिए चार कारण देते हुए दिया जा सकता है—

(१) वेदकाल में मंत्रवक्ता ऋचा का अर्थ न समझनेवालों को भी सामर्थ्य का लाभ दे सकते थे। यदि यह न होता तो वेदवेत्ता ऋषि अन्य लोगों की गरज निभाने में सहायता न दे सकते।

(२) एमिल क्युई की प्रार्थनाएँ, 'ब्रेन वाशिंग' के तन्त्र, आशीश का फल बतलानेवाले उदाहरण सिद्ध कर सकते हैं कि एक केन्द्र में स्थिर विचार-सातत्य क्या चमत्कार करा देते हैं ! कुछ उदाहरण एकचित्त साधना की शक्ति का परिचय जरूर बता देंगे। साधक जितनी श्रद्धा से प्रणेता की ओर देखेगा उतना ही यश उसके पल्ले पड़ेगा। मन्त्र सामर्थ्य के

उपयोग में श्रद्धावान् का विश्वास गृहित बात है। इसलिये जो विश्वास से मन्त्रों का आश्रय लेता है उन्हें अनुकूल फलप्राप्ति का सम्भव अधिक है।

(३) संस्कृत में गति न होनेपर भी मन्त्रों पर निर्भर रहना ही अच्छा है। यदि सच्ची श्रद्धा है तो अनुवाद की बीच की कड़ी कुछ ज्यादा लाभदायी न ठहरेगी। उदाहरणार्थं, नित्यकर्म में पुरोहित कुछ मन्त्र पढ़ते जाते हैं और बीच-बीच में साधक यजमान को "मम कहो" ऐसी आज्ञा देते जाते हैं। यजमान आज्ञा पालन करता है और उससे अपना हित होगा ऐसा मानता है। आगे चलकर भी पुरोहित पर निर्भर रह कर ही फल पाता है। अतः उसके बारे में "मंत्रार्थं न समझते हुए भी फलप्राप्ति" यह बात चरितार्थ ही हुई है।

(४) यह बात तो साफ है कि मूल वेद निर्माता और साधक इन दोनों में जितने मध्यस्थ कम होंगे उतनी फल प्राप्ति की क्रिया अधिक परिणाम-कारक होगी। इसलिये इस ग्रन्थ में मैंने मूलमन्त्र जैसे की वैसे पाठकों के सामने रखे हैं। इसमें मेरा श्रेय चार प्रकार का है। एक : सुलभ वर्गी-करण। दूसरा : वेद निर्माता और साधक इनमें मध्यस्थ के नाते कम से कम रुकावटें डालने का आग्रह धरना। (जैसे कि मैंने 'पोस्टमन' का उदाहरण दिया था। यदि मेरी इस कृतिको कुछ उपमा देनी हो तो टेलिफोन की दे सकते हैं।) तिसरा : प्रत्येक मन्त्र विभाग का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उसका ग्राह्य भाग अधिक स्पष्ट कर श्रद्धावान की 'लेने' की सामर्थ्य और उच्च श्रेणी तक पहुँचा देने का। चौथा : साधकों को समय पर चेतावनी देना। यदि चेतावनी की ओर साधक ध्यान देगा तो ज्ञानमार्ग से वह पूर्णपद पर जाएगा; यदि न मानेगा तो श्रद्धा मार्ग से पा सकता है।

मन्त्र से उपासना करने की रीति—

(१) श्रद्धावान सबेरे आठ बजे या अपनी साधना के समय श्रद्धापूर्वक एक बात करें—यह जो पुस्तक-माला है उसमें से अपना इप्सित निश्चित

करें। अपने इप्सित के अनुसार किसी भी मन्त्र-ग्रन्थ पर हाथ रख कहें—"ये नियम मैं मानता हूँ। इन नियमों से मेरी इच्छा पूरी होवे और वह पूरी होगी ही !!" कोई समझेगा कि यह आश्वासन है अतः परिणाम-कारक होगा। लेकिन श्रद्धावान ऐसी चिकित्सा के झंझट में न पड़ें।

(२) साधक प्रार्थना में जो माँगना चाहता है उसकी माँग करते समय मन से साक्षात् वेदकाल में प्रवेश करें। वेदकर्ताका रूप, तेज इनका ध्यान कर उससे एकरूप होने की कोशिश करें। वह अपनी संकल्प सिद्धि करेगा ऐसी श्रद्धा निर्विकल्प रखें और ऐसी श्रद्धा वह रखेगा तो यश उसका ही है।

(३) इसके बाद हररोज मन स्थिर करने की क्रिया थोड़ा समय तक करनी चाहिए। ऍनी बेझंट की "थॉट फार्मस्" पुस्तक देखिए। उसमें मतभेद के लिए जगह हो सकती है फिर भी विकारग्रस्त मन रंगछटायें बदलता है यह कल्पना प्राथमिक और निःसंदेह है। अतः मन स्थिर करते समय जडसे थोड़ी थोड़ी मुक्ति पाने के लिए रंग कल्पनाओं की सहायता प्राथमिक अवस्था में लेने में कोई हर्ज नहीं है।

(४) इस स्थिरता को कुछ मदद हो इसलिए इसी ग्रंथ के मूलपृष्ठ पर एक लहर के घेरे जैसी आकृति बैंगनी रंग में छपी है। उसके मध्य बिंदू पर मन स्थिर करें। (वैज्ञानिक दृष्टि से यह रंग लघु लहरों का प्रवर्तन करता है। वह शक्तिशाली शान्ति का प्रेरक है।) हर रोज इस प्रकार कुछ समय तक मन विकार रहित करने का प्रयत्न करें।

यश रहस्य और चेतावनी

अथर्ववेद का यश इसी में है कि उन मन्त्रों के द्रष्टा उनपर पूरा विश्वास रखते थे। आज मन्त्रों का प्रभाव कुछ कम हुआ सा दिखाई देता है क्योंकि उनपर श्रद्धा रखने वालों की ऍंठन छूटती गई है। ऋषिमुनि मानव

को 'त्याग' का पाठ पढ़ाकर 'भोग' दिलाना चाहते थे। कालान्तर से साधक वर्ग को तप का पूर्व कर्म और त्याग की पूर्व प्रतिज्ञा अनावश्यक सी लगने लगी। 'इच्छापूर्ति—मन्त्र और तन्त्र' इसमें प्रस्तुत लेखक ने तप और तप फल, सुख और दुःख, सुखाकांक्षा के नियम स्पष्ट किए हैं। और सुखलोलुपता के विरुद्ध चेतावनी दी है। लेकिन इस लालटैन की ओर देख कर भी जो आगे बढ़ाना ही चाहता है, तप के यम नियमों की ओर पीठ फेर कर सुख के साम्राज्य में जो घुसना चाहता है उसके मार्ग में कौन रोड़े डाल सकता है? इसलिए तो मैंने अथर्ववेद के शुरुशुरु में ही तप की प्रतिज्ञा शिरोभाग में डालने की ओर ध्यान दिया है।

उसमें से आत्मदण्ड का तप साधक अग्निसाक्ष मानेगा तो वह जो इच्छा धरेगा वह सफल होगी। ये शर्तें, ये नियमों को सिर-आँखों मानकर ही अथर्ववेद के फलदायी मन्त्र, रामायण के दुःख-मुक्ति साधन, कृष्णगाथा का स्वर्गसुख, शिवगाथा का संकट विमोचक महिमा साधक स्वीकार करें। विचारों का परिणाम प्राणिमात्रों, वृक्षलताओं पर किसी प्रकार होता है यह अब ऑक्सफर्ड में हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है। आशीर्वाद मिले हुए वृक्ष अच्छे सरसाते हैं; शाप मिले हुए कम फूलते हैं। इस प्रयोग के चित्र इस पुस्तकमें अन्यत्र दिए हैं। उसमें शापभ्रष्ट वनस्पती भी कभी फूली हुई और आशिर्वादित कुम्हाला हुई, ऐसा उलटा क्रम भी—थोड़ा सा क्यों न हो—दिखायी देगा। इससे आशाकांक्षी मानव को सृष्टि नियमोंके स्वरूपका और गहरी डुबकी लगाकर तलाश करने की बुद्धि होगी तो ठीक रहेगा। यदि वेदकाल में वृक्षलताएँ प्रार्थना मन्त्र से फूलते होंगे तो उनके पीछे त्याग की सामर्थ्य खड़ी रहती होगी। यज्ञ में घीकी झड़ी से लगा देते। इस तरह घी योंही व्यर्थ उँडेलने से क्या फायदा? यह प्रश्न 'ज्ञानलव दुर्विदग्धों' के आश्रय में सदा पड़ा रहता है। उसका उत्तर 'त्याग' नियम में मिल सकता है। "धन कहाँ दे दूँ?" कंजूस के इस सवाल को आचार्य विनोबाजी ने कुछ उकताकर उत्तर दिया था, "झोंक दे नदीमें।" 'अरे,

कम से कम तू तो तजता चल'। यही सारांश। त्याग की बात चलते ही मानव की हजार आशंकाएँ उछलने लगती हैं। यदि हम चाहते हैं कि विचार का अनुकूल परिणाम होवे तो वह विचार त्यागपूर्ण, निष्काम ऐसाही बनाते जाना चाहिए। यह विचारशुद्धि की प्रक्रिया वेदवेत्ताओं ने 'इदं न मम' इस सीख के द्वारा सतत प्रवर्तित की; गतिशील बनायी। अपने संकल्प की सिद्धि के लिए मन्त्रों का आश्रय लेते समय साधक जितनी यह प्रक्रिया समझा लेगा, अपनायेगा उतनी ही यह प्रकृति—उसकी झोली 'अनन्त हस्तों से' भरेगी। अन्तिम सुख चाहिये तो पूर्णत्व की पूर्णिमा में, नहीं, ध्रुवतारे में अपना चित्त स्थिर करने की कोशिश करनी चाहिये।

और उस अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचने के पहले हरएक सीढ़ी पर चढ़ते चढ़ते मन में कल्पना करते जाओ कि अपने मन का संकल्प पूरा करने के लिये वेद पुरुष आश्वासन देता खड़ा है। तेजःपुंज, रुद्र, भव्य, ओजस्, विशाल, साक्षात् वेदपुरुष अपने मानस-मन्दिर में खड़ा करे। उसके सामने विनम्र, शान्त निरामय रहे। आपका संकल्प सिद्ध होगा इसमें तिलप्राय सन्देह नहीं!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

[स्वामी विज्ञानानन्द के मूल विवेचन का श्री कुलकर्णी (अध्यापक पी. ही. सी. विद्यालय) कृत भाषान्तर]

प्रार्थना

भाग्यदायी प्रार्थना ४ मिनट प्रतिदिन १८६ दिन :
भाग्य, शांति, शक्ति, संपत्ति– ६ प्रयोगसिद्ध मार्ग

'न्यू वे' के २० ग्रंथों व प्रयोगों पर जागतिक मत

डॉ० राधाकृष्णन् : "पूर्णाशीर्वाद" । **आचार्य विनोबा भावे** "आध्यात्मिक-मूल्य विज्ञानसे सिद्ध किया है ।" **डॉ. ई. पी. लिटल**, पीएच. डी. (फिजिक्स), हार्वर्ड विद्यापीठ—"चर्चा करनेपर मुझे मालूम हुआ कि वे (लेखक) एक चिंतक तथा अपने सिद्धान्तोंको दूसरोंको समझा देनेमें कुशल है ।" **मोरारजी देसाई** "......इस पुस्तकमालामें जिन विषयोंका परामर्श लिया गया है, उन विषयोंपर चर्चा करते हुए मैंने प्रसन्नता का अनुभव किया ।" **एन. एस. गायतोंडे, एम. एस. सी.** "इन तत्त्वोंका अनुकरण कर अनेक दुखी लोगोंको लाभ हुआ है ।" **डॉ. देशमुख**, एम. डी., 'डेथ ऑफ डिसीज' की प्रस्तावना में कहते है, "सूक्ष्म विचारपद्धति के लिए मैं अभिनन्दन करता हूँ ।" **यशवंतराव चव्हाण**, "उनकी विचारपद्धति सूक्ष्म और मौलिक होनेके कारण विचारोंको प्रेरित करती है ।" **ह. मो. जोशी**, इतिहास अनुशीलनाधिकारी, महाराष्ट्र सरकार, "आपकी उपाययोजनाके परिणाम देखकर आश्चर्य हुआ । अब पेटमें दर्द नहीं होता ।" विजय मर्चंट, डॉ. ब्रादाव, मास्को, सोमाणी, मोराइस आदिके अन्य अभिप्रायोंके लिए मूल ग्रन्थ देखिये । इनके अतिरिक्त रूस, ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और अफ्रिकाके अनेक विद्वानोंने लेखकके मन, बीमारी, बच्चे, मरणोत्तर जीवन, ईश्वर, विश्वहेतु और सुख-नियन्त्रक नियम आदि से सम्बन्धित विचारोंका समर्थन किया है ।

स्वामी विज्ञानानंद पूर्वनिश्चित समय में ही मिलते हैं तो १८६ दिन के अभ्यास के बाद मिल सकते हैं; क्योंकि वे समाधि-साधना-कालमें निमग्न हैं ।

नव तत्त्वज्ञान के १७ ग्रन्थ स्वामी विज्ञानानन्दजीने अंग्रेजीमें लिखे हैं । उनकी सूची अन्यत्र दी गयी है । मूल्य रु. ५० । फी और दान अस्वीकार्य ।

पता—**"न्यू वे प्रेयर एड्स", दत्तकुटीर, बंबई-पूना रोड, लोनावला (सेंट्रल रेल्वे)**

डाक्टर से सहकार्य करो । खुद को मदद करो ।

साधकों के लिए ६ वैकल्पित पद्धति

(१) ज्ञानमार्ग
(२) गूढ ज्ञानमार्ग
(३) पदार्थ साधनमार्ग
(४) भक्ति श्रद्धामार्ग
(५) भक्ति नामजपमार्ग
(६) एच्० एफ्० ओ० मार्ग (लघुलहरी नाद) श्रीमान वर्ग के लिए

आत्मकल्याण के लिये पूर्वग्रहमुक्त डॉक्टर की सलाह लिजिये ।

पहिला मार्ग : ज्ञानमार्ग—'न्यू वे माला'

अंग्रेजी में १७ किताबें । (१) गॉड रीकन्सिडर्ड : रु. ३; (२) परपज् ऑफ दि युनिव्हर्स : रु. २; (३) व्हॉट माइंड मीन्स : रु. २; (४) सायन्स अँण्ड फिलॉसाफी : रु. २; (५) लाईफ आफ्टर डेथ अँण्ड इन्डेक्स : रु. ५; (६) डेथ ऑफ डिसीज् : रु. ६; (७) क्युअर विदाऊट मेडिसिन (तथा 'अँड प्रेअर टू प्रिस्क्रिप्शन') : रु. ३; (८) क्युअर युवरसेल्फ : रु. २; (९) रिच्, अँम्बीशस् अँण्ड हेल्दि : रु. २; (१०) डिअर मिस्टर बॉस : रु. २; (११) न्यू वे टु फॉर्च्यून अँण्ड हॅपीनेस : रु. ६; (१२) लीप टु फॉर्च्यून अँण्ड हॅपीनेस् : रु. २; (१३) ईक्वेशन ऑफ हॅपीनेस् : रु. २; (१४) सेव युवर चाईल्ड फ्रॉम युवरसेल्फ : २; (१५) मार्क्स प्रुड्ज् रीबर्थ : रु. २=५० न. पै. (१६) फिफ्टी पिक्टोरियल रिमाइंडर्स : रु. २; (१७) एम्प्लॉयर्स.... सफर् : कॉझेस् अँण्ड रेमेडिज् : रु. २.

चित्रसंच : (१) सर्वधर्म प्रतीक (२) अनेकधर्म भक्तिप्रतीक (३) ध्यानशिक्षण (४) आरोग्य नियम (५) अध्यात्मजीवन (६) लघुलहरी शक्तियोग. एकूण ८० चित्रालेख मूल्य १२ रु.

डाक्टर, शिक्षक, धनी 'प्रार्थना' तत्त्व अपनाते हैं ।

दूसरा मार्ग : गूढ ज्ञानमार्ग—प्रार्थना क्रमांक पद्धति

इतर विषयों के समान प्रार्थना के बारे में नव-तत्त्वज्ञान (न्यू वे) का दृष्टिकोण बुद्धिनिष्ठ है। अधिक उच्चावस्था प्राप्त होने तक प्रार्थना को एक उपयुक्त माध्यम बनाया जा सकता है। अध्यात्म का इतिहास साक्षी है और यह एक विस्मय की बात है कि पंथविशेष में विश्वास रखनेवाला एक व्यक्ति अन्य पंथ की प्रार्थना से भी लाभान्वित हुआ है। सत्य, सबसे परे, एकमात्र है, शायद यही कारण है कि उस व्यक्ति के ऊपर, अन्य शब्दाश्रित सत्य, अपना प्रभाव डालने में समर्थ होता है। इसी दृष्टिकोण से इन २५५५ प्रार्थना-सूत्रों को सम्पादित किया गया है जिसका आधार सभी धर्मों के ग्रन्थ, उनके शिष्यों के उद्‌गार तथा अनेक तत्त्वज्ञों के अनुभव हैं। साधकों से सिफारिश की जाती है कि वे प्रतिदिन एक नये प्रार्थना-सूत्र-क्रमांक पर ध्यान दें। बहुतांश साधकों की मनीषा सफल होगी, उनकी इच्छापूर्ति होगी और दुःख दूर होंगे। यह प्रभाव नवतत्त्वज्ञान का योगायोग मुक्ति का रहेगा।

कुछ प्राथमिकताएँ

आपकी अपनी दैनंदिनि कोई भी प्रार्थना हो, किन्तु उसके बाद कम से कम **४ मिनट तक** यह नयी तरह की प्रार्थना अवश्य करें। (१) पिछले दिन के विकारक्षोभ स्मरण करें, खुदको सुधारने का संकल्प करें और स्वयं शिक्षा के प्रतीक रूप में प्रतिमास ऐसी एक प्रार्थना-पुस्तिका दूसरे किसी को दें, किंवा नवतत्त्वज्ञान के सिद्धान्तों का एक पृष्ठ तक मनन करें। (२) प्रार्थना-पुस्तक में दिये हुए सर्वधर्म प्रतीकमें से कोई भी एक प्रतीक सामने रखकर कहो "अन्तिम अस्तित्वके नामसे मैं स्वयं सुधारणा का प्रयत्न करूँगा। उस मर्यादा तक मुझे लाभ मिल रहा है। एक दिन मुझे परिपूर्ण समाधान मिलेगा। आज मैं नवतत्वज्ञान प्रार्थनासूत्र क्रमांक एकसे

डाक्टर औषधि के साथ प्रार्थना सूचित करे तो फल निश्चित।

शुद्ध हो रहा हूँ।" हर दिन क्रमांक में बदल होगा। २, ३....१८६ तक। १८६ दिन के अभ्यास में साधकों को किसी दिन कोई प्रार्थना क्रमांक सद्भाग्य देगा। साधक को इच्छापूर्ति हो तो वे इस क्रमांक प्रार्थना का चिन्तन करें। अथवा इच्छानुसार, २५५५ तक सब क्रमांक लेना साधक पसंद करे तो, दूसरा कोई क्रमांक अधिक सफल होना सम्भव है। (३) प्रातः। सायं ८ बजे, कम से कम ६० सेकंड तक विचाररहित मौन धारण (अतिरिक्त उच्चवर्गीय के लिए एच० एफ० ओ० लघुलहरी-युक्त प्रयोग)। (४) प्रार्थनासत्र शुरू करने के पहिले उसकी निश्चित दिन की जानकारी न्यू वे प्रार्थना केन्द्र को दीजिये। इससे 'न्यू वे' केन्द्र कों साधकों के लिए 'नेगेटिव' शक्ति नया मार्ग से प्रसारित करने की सुविधा होगी। (५) कोई प्रार्थना पद्धति की चर्चा न करिये। श्रद्धा के प्रांत में शंका अनावश्यक है। बुद्धिनिष्ठ निष्कर्ष के ही प्यासे हो तो 'न्यू वे' ग्रंथमाला परिपूर्ण समाधान देगी।

सर्वधर्मचिन्ह प्रतीक चितसंत्र ३ रु. ट. ख. सहित.

तीसरा मार्ग : पदार्थसाधन—जीवनशुद्धि

'न्यू वे' वस्तुएँ

'न्यू वे' ग्रंथमाला में जो उपाय सुझाये है, उसके उपसिद्धांत के अनुसार यह जानकारी दी गई है। "केवल दवाइयों या अन्य बाह्य उपचारों से क्रमशः बीमारी या दुर्दैवी घटनाएँ टल सकती ही हैं, ऐसा नहीं" यह 'न्यू फिलासफी' ने स्पष्ट रूप में प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है। यह सिद्धांत मान्य कर 'न्यू वे' की ओर से नीचे दी हुई वस्तुओं का मर्यादित संग्रह बिक्री के लिये निकाला गया है। इससे होनेवाले लाभ का व्यय प्रकाशन व्यवस्था के लिए किया जायगा।

विशेष जानकारी : (१) अन्य उपचार करते हुए ही नीचे दी हुई वस्तुएँ ली जा सकती हैं।

प्रार्थनासूत्र—(१) प्रार्थना निष्काम-ज्ञानपूर्ण होनी चाहिये। इसलिये 'न्यू वे' ग्रन्थमाला। (२) प्रार्थना शांतिपूर्ण वातावरण में होनी चाहिये। इसके उपलक्ष में फार्च्यून अगरबत्ती। (३) प्रार्थना का आधार निसर्ग-नियम होना चाहिए। इसका प्रतीक रुचिविपरीत आहार और दंतरक्षक !

(२) **प्राप्तिस्थान :** ये वनस्पतियाँ ताजा और शुद्ध मिलने की दृष्टि से, ये वनस्पतियाँ दूकान में नहीं रखी हुई हैं। मनीआर्डर केन्द्र के नाम पर ही करें।

(३) **कीमत :** रु. १-००, पोस्ट पैकिंग के लिए ५० न. पै. ज्यादा देने होंगे। चार पैकिंग एक साथ लेने से डाक व्यय नहीं देना पड़ेगा।

रुचि-विपरीत आहार

किसी भी दुःख में या बीमारी में इस आहार का उपयोग होगा। इस आहार से पीछे 'प्रतिगति' तत्व है। इसका विस्तृत विवरण 'न्यू वे सिरीज' में है। प्रार्थना के साथ हमेशा के आहार में नीचे दी हुई सूचनाओं के अनुसार लिया जाय। **अन्य दवाइयों के साथ लेने से भी लाभ होगा।**

सूचनाएँ : (१) **मात्रा :** चाय के चम्मच का १६ वाँ हिस्सा पानी में या सूखा भोजन के पूर्व १५ मिनिट। यदि कुछ तकलीफ न हो तो प्रति तीन चार दिन यह मात्रा बढ़ावें। तकलीफ हो तो मात्रा कम करें। ऐसे समय सूक्ष्म मात्रा से भी लाभ होगा। अच्छा होने पर पुनः मात्रा बढ़ाते रहिये।

इच्छा किसी तरह की हो, प्रार्थना से शुद्धतर, प्राप्तकाम होती है।

(२) 'रुचि-विपरीत' वनस्पतियों के कई प्रकार हैं। इसलिये अनेक बार बदलकर लेते रहना अच्छा होता है।

(३) प्राणघात न होने वाली किन्हीं भी वस्तुओं को आप पसंद करिये। उदा: (१) गुलवेल, गुलंचा, (२) किरयात, (३) कोरफडबोल, (४) अडोसा, बन्सा, (५) दुक, बालनिंब, (६) हरजोरी, निर्बिसी, अकंडी, पहाडवेल, (७) नाकपत्र, निशोत्तर, (८) करेला, (९) मेथी, (१०) बावची, भावज, (११) संभलु, निगुंडी, (१२) कानफटा, ज्योतिष्मति। ये हमारे यहाँ बेची नहीं जाती।

दंतरक्षक वनस्पति

मीठे पाउडर और टुथ पेस्ट के दुष्परिणाम प्रयोगसिद्ध हैं। ब्यूरो ऑफ इकॉनॉमिक रिसर्च एण्ड स्टेटिस्टिक्स ऑफ अमेरिकन डेन्टल असोसिएशन (वार्षिक पुस्तक ५३-५४ पृष्ठ संख्या १६८) में लिखा गया है कि 'आठ में से प्रत्येक एक गोरे आदमी के दाँत खराब रहते हैं।' उसी किताब के पृष्ठ ६२ पर पुनः कहा है कि 'दंतरक्षक अर्थात् पेस्ट से कीटाणुओं का नाश होता है यह असम्भव लगता है।' यह संभ्रम टालने के लिए विज्ञानशुद्ध दंतरक्षक का उपयोग कीजिये।

सूचनाएँ: (१) यह वनस्पति दाँतों को, ज्यादातर मसूड़ों को लगावें। कडुआ रहने से भी दो मिनटतक वैसा ही रखकर बाद में दाँत साफ करें। (२) मूल द्रव्य—नीम।

फार्च्यून अगरबत्ती

आवश्यक हो तो मानसिक शान्ति के लिये उपयुक्त। (बिना बाह्य उपचारों के प्राप्त होनेवाली शांति अधिक श्रेष्ठ है।) अन्य सुगंधित अगरबत्तियाँ चित्त को एकाग्र नहीं होने देतीं लेकिन यह अगरबत्ती अपने मंद सुगंध के कारण शांत वातावरण निर्माण के लिये उपयुक्त है।

प्राप्त यश अपने साथ रखने का इलाज : प्रार्थना।

सूचनाएँ :—(१) अगरबत्ती लगाने के बाद प्रार्थना शुरू कीजिये। प्रार्थना जितनी इच्छामुक्त, सफलता की संभावना उतनी ही अधिक। ऊपरी निगाह से देखने पर इसमें कुछ आश्चर्य मालूम होगा लेकिन प्रकृति का अंतिम नियम वही है। उससे शुद्ध और शाश्वत सुखप्राप्ति होती है। एक पैकेट में कई तरहकी सुगंधों का रहना संभव हैं लेकिन उसमें तत्त्व एक ही है। अगरबत्ती और दन्तरक्षक : रु० २ (भेजने का खर्च १ रुपया ज्यादा। एक बरस का २४ रु० भेजें तो पोस्टेज खर्च नहीं पड़ेगा)।

चौथा मार्ग : भक्ति श्रद्धा-मार्ग

अथर्ववेदके सामर्थ्यशाली मंत्र पहली बार ही वर्गीकरणके साथ दिये जा रहे हैं। इन मंत्रोंकी सामर्थ्य किसमें है इसका विवरण यहाँ मिलेगा। संस्कृत न समझनेवालोंको भी इसका उपयोग करनेकी रीति इसमें सूत्र-रूपसे दी गयी है। प्रार्थनाके प्रारंभमें वेदपुरुषकी आकृतिका चिंतन कीजिये। इसके बाद प्रार्थना शुरु करिये। हमारे प्रसिद्ध किये हुए अथर्ववेदके प्रत्येक खण्डमें मूल पृष्ठपर इधर-उधर भटकनेवाले मनका प्रतीक छपा है। उसके मध्यमें बैंगनी रंगका एक बिंदु है। ग्रंथके सारका तत्त्व उस बिंदूमें मान लीजिये। मध्य-बिन्दु पर सबेरे कुछ मिनट तक स्थिर रहिये। १८६ दिनोंमें आपकी इच्छाएँ सफल हो रही हैं ऐसा अनुभव होगा।

आशीर्वादसे वनस्पतियाँ कैसे पोषित होती हैं इस प्रयोगकी अनेक आकृतियोंके साथ चित्रसंच अलग मिलेंगे।

मंत्र वर्गीकरण सुलभ ऐसे आठ खंडोंमें किया है। १—संकल्प-सिद्धि २—कृषिवर्धन ३—धनसत्ता ४—आरोग्य ५—प्रपंच-आयु ६—परीक्षा-यश ७—शत्रुनाश ८—ईश्वर प्राप्ति

वय, जाति, धर्म में अन्तर रहे, वैज्ञानिक प्रार्थना सबको फलदायी।

पृष्ठ संख्या : ७००. मूल्य : २४ रु. डाकव्यय और पॅकींग आदिके लिए ६ रु० अलग। प्रकाशन प्रारंभ मई ६४ से.

पांचवा मार्ग : भक्ति नाम जप मार्ग

(अ) रामनाम : रोग मुक्ति, भव मुक्ति—तुलसीदासजी, गांधीजी, विनोबाजी इनके अनुभव और विज्ञान इनके समन्वयसे आठ खंडोंमें पूरी होनेवाली माला। व्याधि कैसे होती है ! किस नियमसे जुड़ जाती है और चली जाती है तो किस नियमसे इसका प्राथमिक विवरण। (आकृतियों, रेखाचित्रों, आलेखोंके चित्रसंच अलग।) प्रकाशन प्रारंभ मई ६४ से.

हर रोज माला का एक पेज पढ़िये। यद्यपि भाषा ध्यान न आयी फिर भी आप निग्रहके साथ, पूरी पूरी श्रद्धासे पेज देखते जायेंगे तब लेखके चारों ओर छपा हुआ रामनाम १८६ दिनोंमें आपको बहुत कुछ दे जायेगा।

सप्त वार्षिक दिन दर्शिका में तुलसी रामायण पूरा होगा। प्राथमिक खंड पूरा हो चुका है। कुल ३००० पृष्ठसंख्या। मूल्य ३६ रु. डाकव्यय के साथ।

(आ) कृष्णभक्ति : स्वर्गप्राप्ति :—(संकल्पित) कृष्ण भक्ति से स्वर्ग प्राप्ति का रहस्य खोल रखा है। मृत्यु के बाद की अपनी स्थिति, स्वर्ग प्राप्ति के उपाय सप्रमाण कुछ उदाहरण, आकृतियाँ, आलेख इनके साथ वैज्ञानिक दृष्टि से ! गीता और आनुषंगिक तत्त्वोपदेश के साथ ! मूल्य रु.३ डाक-व्यय रु. १।

(इ) शिवशक्ति : भवमुक्ति : (संकल्पित) शंकर यह शक्तिका और हर प्रकार के भय का हरण करने वाला दैवत है। उसका तर्कशुद्ध विश्लेषण आठ खण्डों में। शिवस्तोत्रादि तत्त्वसंग्रह के साथ। सचित्र। राग, भय आदि भावनाओं के रंगीन चित्र। और साथ उनका स्पष्टीकरण तथा विवरण। मूल्य रु० ३, डाकव्यय रु० १।

प्रार्थना मित्रों को भी कहिये। इस क्रिया में श्रद्धा शुद्ध, दृढ होती है।

छठा मार्ग : एच्० एफ्० ओ० (लघुलहरी)

विशेषतः श्रीमान्, उच्च वर्ग के लिये। ध्वनिसामर्थ्य से उनकी जो अधिक शक्ति खर्च हो जाती है उस दुर्घटना से बचने के लिये यह विशेष मार्ग है। (अधिक जानकारी ६२-६३ की दूसरी और ६३-६४ की दोनों 'न्यू वे' इयर बुक्स्।)

१६ आलेख चित्र. डाकव्यय के साथ मूल्य २ रु० (ध्वनिलहरों की शिक्षा ६३% दानतत्त्व स्वीकार।)

आवश्यक सूचनाएँ तथा एक असामान्य

(१) छः पर्याय स्वयंपूर्ण, स्वतन्त्र हैं। एक साथ अनेक पर्याय का उपयोग आप सुविधा से कर सकते हैं।

(२) सत्रह पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित हुई हैं। उनमेंसे कुछ पुस्तकों के अनुवाद हुए हैं। चित्र संच छप रहा है। कुछ स्वतन्त्र साहित्य तैयार हो रही हैं। मराठी तथा गुजराती में 'इच्छापूर्ति मंत्र और तंत्र' ३ रु०, मराठी में 'दुःखमुक्ति' ३ रु०, 'कलकी' ७॥ रु०, 'सातवा स्वर्ग' ३ रु०, यह सब साहित्य तैयार हैं। वैकल्पिक मार्ग १ में से 'प्रार्थना साधन' तैयार है।

इनमेंसे ज्ञानमार्गके—पहले मार्गके—आखिर में जिनका उल्लेख किया गया हैं वे पाँच चित्र-संच और मार्ग तीनमेंकी वस्तुयें इनमें भाषाका सवाल नहीं उठता। मार्ग क्रमांक दो में भी भाषाका सवाल नहीं उठता। चौथे और पांचवे मार्गके बारेमें छोटा लेकिन श्रद्धावानोंके लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण ऊपर दिया गया है। जान-बूझकर ही संस्कृत या हिन्दीका अनुवाद नहीं दिया गया है। सभी मंत्रोंका अपनी मूल सामर्थ्यके साथ साधकोंको लाभ मिले यही हेतु था। श्रद्धावान साधक इस शुद्धताके कारण भाषा न समझते हुए भी लाभ उठाता है ऐसा अनुभव है।

(४) वैकल्पिक मार्ग चार का साहित्य का मूल्य ३० रु० है। भाषा न समझनेसे किंवा अन्य कारणसे आप मजबूर हो तो और एक प्रकटन से आप प्रसन्न रहिये। इस पर्याय के लिए आप ३६ रु० भेजिये। साहित्यके साथ आपको एक बरस तक पर्याय तीनमें उल्लेखित प्रार्थना साधन (नित्योपयोगी वस्तुएँ) प्राप्त होती रहेंगी। एक बरसमें आप इच्छासाफल्य का अनुभव करेंगे तभी आप इस नित्योपयोगी जीवनशुद्धी साधनका २४ रु. मूल्य भेज दीजिये।

(५) पर्याय २, ३, ४, ५, ६ में अभी भाषाज्ञानका सवाल नहीं उठता। मार्ग दो का खर्चा केवल २५ न० पै० है। वैकल्पिक मार्ग क्रमांक दो का विवेचन ऊपर पूर्णरूपसे हो गया है। कोई गरीब साधक ही इसका उपयोग अविलंब, तुरंत, दूसरे साधनके बिना शुरू कर सकेंगे।

(६) गरीबोंके लिए कालमर्यादा तक और एक सुविधा। साहित्य खरीदनेवाले छः साधक एक मार्गका एक साथ, एक पतेपर साहित्य मंगवायेंगे तो उन सज्जनों को नवसंदेश पहुँचानेवाले साधक को इसी वैकल्पिक मार्गका साहित्य विनामूल्य मिलेगा।

(७) स्वामी विज्ञानानंद पूर्वनिश्चित समयमें ही मिलते हैं तो वे १८६ दिनके अभ्यासके बाद मिल सकते हैं; क्योंकि वे समाधि-साधना-काल में निमग्न हैं। (सोमवार : गंधव्रत. मंगल : मूकव्रत. बुध : उपवास. गुरु : नाद. शुक्र: अंध. शनि : प्रार्थना. रवि : ज्ञान। १९६५ के बाद अधिक निग्रह पूर्ण। प्रत्येक व्रत सायंकाल तक—पीछले दिन के सायंकाल से—समाप्त हो जायगा।)

(८) फी और दान अस्वीकार्य।

(९) पता:—"न्यू वे प्रेअर एड्स" दत्तकुटीर, बम्बई-पूना रोड, लोनावला (सेंट्रल रेल्वे).

'न्यू वे' का सर्व–साधन बिना मूल्य

बिना पैसे के 'न्यू वे' साधन प्राप्त हो सकते हैं। ग्रन्थ और प्रार्थना-सूत्र मुख्य केन्द्रोंमें पूर्वसमय निश्चित करनेके बाद आप बिना मूल्य पढ़ सकेंगे। रुचिविपरीत आहार, अगरबत्ती, दंतरक्षक 'न्यू वे' सिद्धांत पर आप खुद बना सकते हैं। तैयार करने का सूत्र ऊपर दिया गया है। फिर तैयार साहित्य प्राप्त चाहिये तो मूल विवेचन ऊपर किया गया है। तैयार साधन खरीद करनेवाले साधकोंके लिये—

विशेष सूचनाएँ : व्ही॰ पी॰ पद्धति नहीं। मनीआर्डर, पोस्टल-आर्डर, बैंक ड्राफ्ट्स से (चेक नहीं) रकम भेजिये। सामान्यतः मुख्य केन्द्र पर दोपहर ३ से ४ तक बिक्री–व्यवस्था रहेगी, पर निश्चित नहीं। पता कव्हर के पिछले पृष्ठ पर। साधक आपका साहित्य खुद बना सकें तो अधिक अच्छा है। अपनी तरफ से, हम बिक्री में से सर्व लाभ विज्ञान प्रचार को देते हैं।

<u>ग्रंथबिक्री</u>: बाम्बे बुक डेपो, प्रार्थना समाज, बंबई ४; नेलेंकर बुकसेलर्स, पूना २. <u>अन्य वस्तुएं</u> : सिटी स्टोअर्स, मैजिस्टीक सिनेमा के सामने, बंबई ४.

प्रातिनिधित्व के लिए : न्यू वे प्रेयर एडस् , लोनावला.

'न्यू वे' फी अथवा दान नहीं स्वीकार करता।

***

१८६ दिनो में

भाग्यप्राप्ति

इच्छापूर्ति का

अनुभव

आगे का पृष्ठ अवश्य देखिये ।

शीघ्रता क्यों—अनुभव लिजिये ।

(१) १९६५ की दैनंदिनी विशेष हेतुसे शीघ्र प्रसिद्ध हो गया है। किसी ग्राहक को सूचित कीया हुआ '१८४ दिन में भाग्यदायी प्रार्थना' का अनुभव लेना है तो उनको इससे सुविधा होगी। आजही केवल चार मिनट प्रतिदिन प्रार्थना शुरू करिये। १९६५ में आप को बुद्धि-निष्ठ चमत्कार का दर्शन होगा। पृष्ठ ४००, मूल्य केवल रु. ३ + पोस्टेज १ रु.

(२) हिन्दी सूचना के मराठी, गुजराती, अंग्रेजी भाषांतर उपलब्ध है। मूल्य ६ × ८ इंचके पैकेट के साथ केवल २५ न. पै.।

(३) चार मिनट प्रार्थना (मार्ग २) से, दैनंदिनी में (डायरी) दिया हुआ रामनाम से अथवा अन्य चार पद्धतिओं से अधिकतर लाभ होने के लिये मुख्य केन्द्र पर इसी प्रकार सूचना भेजिये।

नाम ....

व्यवसाय ....

पता ....

प्रार्थना-पद्धति मार्ग (१, २, ३, ४, ५, ६,)...

प्रार्थना हेतु ....

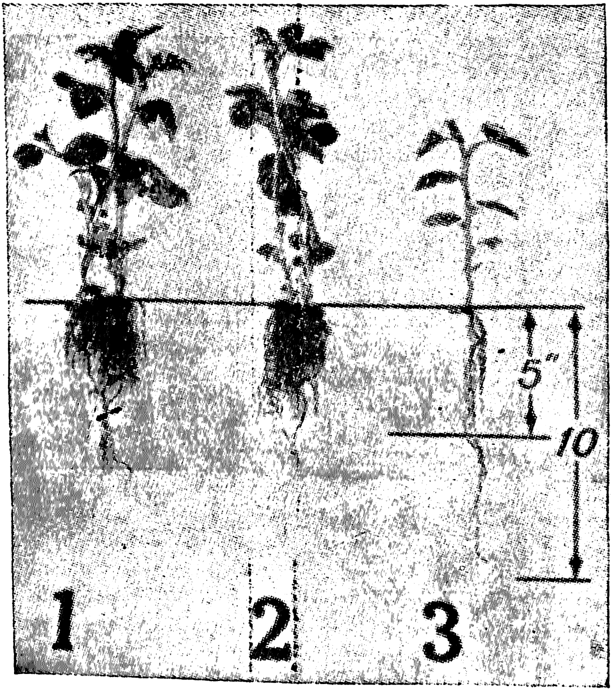
प्रार्थना की शुरुवात ....

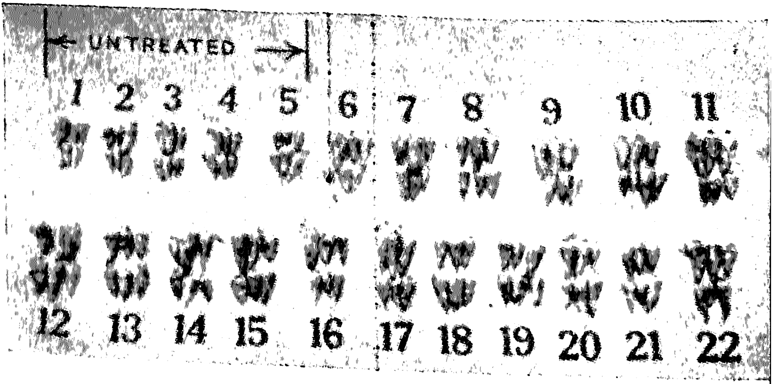
हस्ताक्षर .... तारीख ....



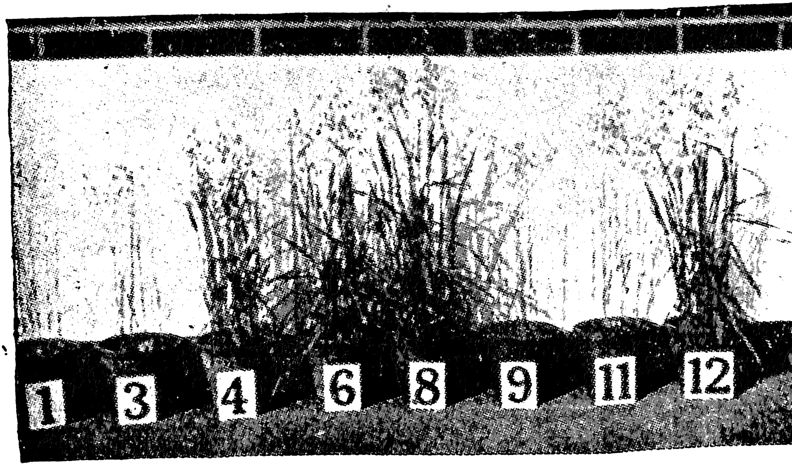
मुख्य केन्द्र : न्यू वे प्रेयर एडस्, दत्तकुटीर,
बंबई पूना रोड, लोनावला.

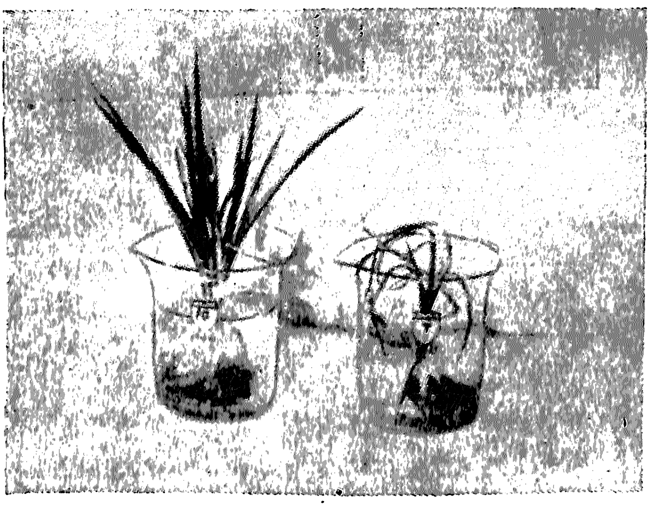
मुद्रक—ललित प्रेस, पत्थरगली, वाराणसी–१ फोनः ३७९७



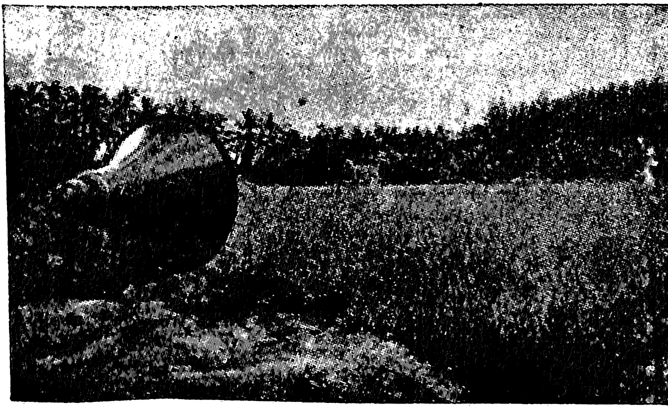


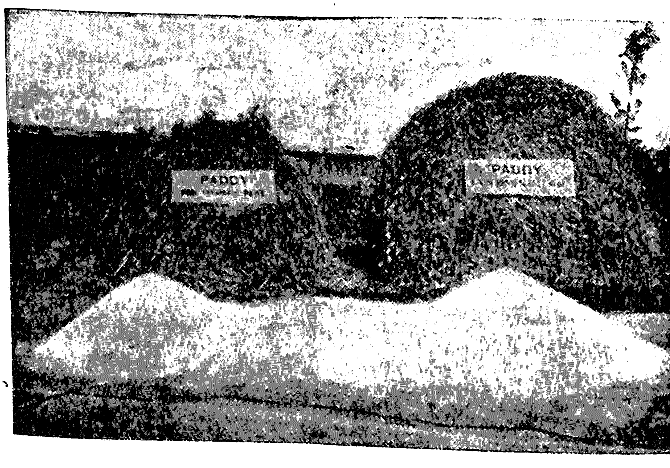
आशोर्वाद-शाप प्रभाव आक्सफोर्ड प्रयोग





आशीर्वाद-शाप प्रभाव ऑक्सफोर्ड प्रयोग





ध्वनि-वनस्पति प्रभाव प्रयोग



आशीर्वाद-शाप प्रभाव ऑक्सफोर्ड प्रयोग

अथर्ववेद-मंत्र : संकल्पसिद्धि

७ : [६१ (६३)] तपः

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्त सुमेधसः ॥१॥
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृणवन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२॥

७ : [९७ (१०२)] यज्ञः

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान्यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१॥
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२॥
यानावह उशतो देव देवांस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३॥
सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥४॥
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥५॥
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥६॥
वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥७॥
मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां
स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥८॥

७ : [९८ (१०३)] हविः

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१॥

७ : [१०२ (१०७)] आत्मनोऽहिंसनम्

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

११ : (५) ब्रह्मचर्यम्

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥१॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजना पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन्त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥२॥
आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३॥
इयं समित्पृथिवि द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥
ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७॥
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति ॥८॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत्केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

अर्वागन्य इतो अन्य पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥

अभिक्रन्दन्स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१२

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन्ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥१४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत्प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥१५॥
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥१६॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥१९॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२०॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१॥
पृथक्सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥
देवानामेतत्परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥२५॥
तानि कल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६॥

१ : (१) मेधाजननम्

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गहेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

२ : (१२) शत्रुनाशनम्

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम्।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत्क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६॥
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥७॥
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८॥

२ : (१४) दस्युनाशनम्

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥१॥
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३॥
भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६॥

२ : (१६) सुरक्षा

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥

२ : (१७) बलप्राप्तिः

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

२ : (२४) शत्रुनाशनम्

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१॥
शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३॥
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥
उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥
अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥
भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

३ : (२०) रयिसंवर्धनम्

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा हो वर्धया रयिम् ॥१॥
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥
इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना
असद्दानकामश्च नो भुवत् ॥६॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥
दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

३ : (२१) शान्तिः

ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥

यो देवो विश्वाद्यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

दिवं पृथिवीमन्वतरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान्देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम ॥८॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥

३ : (२२) वर्चःप्राप्तिः

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद्यशो अदित्या यत्तन्वः संबभूव ।
तत्सर्वे समदुर्मह्यमेतद्विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्तते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥

येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन्तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३॥

यत्ते वर्चो जातवेदो बृहद्भवत्याहुतेः ।
यावत्सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४॥
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत्समश्नुते ।
तावत्समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५॥
हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान्बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ॥६॥

४ : (१४) स्वर्ज्योतिःप्राप्तिः

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन्तेन रोहान्रुरुहुर्मेध्यासः ॥१॥
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान्हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा देवेभिराध्वम् ॥२॥
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥३॥
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५॥
अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६॥
पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां
दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७॥
प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां
धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥८॥

श्रृतमजं श्रृतया प्रोर्णु हि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥६॥

४: (१६) सत्यानृतसमीक्षकः

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥२॥
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥
उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥
सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव
श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥
यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यो यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥९॥

४: (१७) अपामार्गः

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्व्योषधीरतो नः पारयादिति ॥२॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥
दौष्पन्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥
क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

४ : (२३) पाप-मोचनम्

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥
येन ऋषयो बलमद्योतयन्युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥

येन देवा अमृतमन्वविन्दन्येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवाः स्वराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

४ : (२४) पापमोचनम्

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥८॥
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥
यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

४ : (२५) पापमोचनम्

वायो सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुशेपम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग्वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

४ : (२६) पाप-मोचनम्

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये
अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
असंतापे सुपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन्ययोर्वा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

४ : (२७) पाप-मोचनम्

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३॥
अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥
यदीदिदं मरुतो मरुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥
तिग्ममनीकं विदितं सहस्यन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७॥

४ : (२८) पापमोचनम्

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद्विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
ययोरभ्यध्व उत यद्दूरे चिद्यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

यः कृत्याकृन्मूलकृद्यातुधानो नि तस्मिन्धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासुग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

४ : (२९) पाप-मोचनम्

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं यौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

४ : (३३) पाप-नाशनम्

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥१॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥३॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥५॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥६॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥७॥
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

४ : (३९) मृत्युसंतरणम्

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥१॥
येनातरन्भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन्तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२॥
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन ।
यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥३॥
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४॥
यः प्राणदः प्राणदवान्बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५॥
यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६॥

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७॥

४ : (३९) संनतिः

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥
पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥
अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।
सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥
दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।
सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६॥
दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७॥
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म
भागम् ॥९॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१०॥

९ : (३) विजयाय प्रार्थना

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३॥
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४॥
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु देवहूतिः ।
दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥५॥
दैवी षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या ॥६॥
तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥७॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥
धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०॥
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेद्री ॥११॥

९ : (९) आत्मा

दिवे स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥
दिवे स्वाहा ॥५॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥६॥

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे
द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७॥
उदायुरुद्बलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८॥

९ : (११) संपत्कर्म

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान्पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ।
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन्काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन्विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५॥
एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत्ते विद्वान्वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणींरभ्येतावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७॥

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥
समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०॥
देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः॥११॥

९ : (१२) ऋतस्य यज्ञः

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेष कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥

९ : (२४) ब्रह्मकर्म

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१॥
अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२॥
द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥३॥
वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥४॥
मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५॥
मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥६॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥७॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥८॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥९॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१०॥

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥११॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१२॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१३॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१४॥

पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१५॥

तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१६॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१७॥

९ : (२६) नवशालायां घृतहोमः

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन्यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५॥
एयमगन्बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान्युनक्तु
सुयुजः स्वाहा ॥९॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

५ : (२७) अग्निः

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्देवः
सविता विश्ववारः ॥३॥
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥४॥
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५॥
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन्वसुधातरश्च ॥६॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७॥
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥८॥
दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत
गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु ।
देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥१०॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणः ।
त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२॥

६ : (१) अमृतप्रदाता

दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेहि ।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥
तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

६ : (२) जेता इन्द्रः

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥१॥
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।
विरप्शिन्वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥२॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥३॥

६ : (७) असुरक्षयणम्

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥१॥
येन सोम साहन्त्यासुरान्रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥२॥
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

६ : (१०) संप्रोक्षणम्

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१॥
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२॥
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३॥

६ : (१९) पावमानम्

न्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१॥

मा नः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥२॥
आभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान्पुनीहि चक्षसे ॥३॥

६ : (३१) गौः

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः ।
व्यख्यन्महिषः स्वः ॥२॥
त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥३॥

६ : (३५) वैश्वानरः

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१॥
वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप ।
अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२॥
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् ।
एषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥३॥

६ : (३६) वैश्वानरः

ऋतावानं वैश्वनरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं धर्ममीमहे ॥१॥
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥२॥
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥३॥

६ : (४७) दीर्घायु:प्राप्ति:

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान्वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१॥
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन्द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२॥
इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३॥

६ : (४८) स्वस्तिवाचनम्

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥१॥
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥
वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

६ : (४९) अग्निस्तवः

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥
मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून्बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२॥
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३॥

६ : (५१) एनोनाशनम्

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥

आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३॥

६ : (५८) यशःप्राप्तिः

यशसं मेन्द्रो मघवान्कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१॥
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२॥
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

६ : (६२) पावमानम्

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१॥
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३॥

६: (८०) अरिष्टक्षयणम्

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१॥
ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥२॥
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३॥

६: (९३) स्वस्त्ययनम्

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१॥
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥२॥
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद्विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३॥

६: (९९) संग्रामजयः

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१॥
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन्न उदीरते।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥२॥
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥३॥

६: (१०७) विश्वजित्

विश्वजित्त्रायमाणायै मा परि देहि।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥१॥
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥२॥
विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥३॥
कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् ॥४॥

६: (१२८) राजा

शकधूमं नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥

९ : (४) ऋषभः

साहस्रस्त्वेप ऋषभः पयस्वान्विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन्बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥१॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥
पुमानन्तर्वान्स्थविरः पयस्वान्वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥३॥
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥४॥
देवानां भाग उपनाह एषोपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥५॥
सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते
यच्छ वा अमूः ॥६॥
आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥७॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभूतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिण: ॥८॥
दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥
यं इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११॥
पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२॥
भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्वोषधीः ॥१३॥
गुदा आसन्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन्पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४॥
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत्सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥१५॥
ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥
शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥
शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥
ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥१९॥
गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥२०॥

अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥२१॥
पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥२२॥
उपेहोपपर्चनास्मिन्गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥२३॥
एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४॥

१० : (७) सर्वाधारवर्णनम् ।

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥
कस्मादङ्गाद्दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात्पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद्वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥
क्व प्रेप्सन्दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन्पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४॥
क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५॥
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६॥
यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः । ॥७॥
यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत्कियत्तद्बभूव ॥८॥

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद्भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९॥
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०॥
यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः । ॥११॥
यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥१२॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१३॥
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१४॥
यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥१५॥
यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६॥
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ॥
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७॥
यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८॥
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१९॥

यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥२०॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥२१॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥२२॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥२३॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥२४॥

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥२५॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन्पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥२६॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥२८॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३०॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥३१॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
तस्मै दिवं यश्चक्रे मूर्धानं ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३३॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३४॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारो-र्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥३५॥
यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३६॥
कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७॥
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥३८॥
यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥३९॥
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४०॥
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥४१॥
तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद्वि जभाराधि नाके ॥४३॥
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं समानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥४४॥

११ : (१) ब्रह्मौदनम् ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनम् पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान्देवान्यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान्वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६॥
साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥८॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून्यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद्भराय ।
तासां गृह्णीताद्यतमा यज्ञिया असन्विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१२॥
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन्यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु ॥१५॥
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान्पशून्नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ।
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा
सुकृतामेत लोकम् ॥१८॥
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान्बलिहाराय
मृडतान्मह्यमेव ॥२०॥
उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१॥
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३॥
अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो
यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥२४॥
शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान्प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन्प्राशितारः ॥२५॥
सोम राजन्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान्ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु
प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥
इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥२८॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात्परमापद्य यद्वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥३०॥
बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद्वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥३१॥
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन्प्राशितारः ॥३२॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३॥
यज्ञं दुहानं सदमित्प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥३४॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान्गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥३५॥
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥३६॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन्ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

११ : (२) रुद्रः ।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥
शुने क्रोष्टे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात्ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद्दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणत्पृथिवीमनु ॥१०॥
कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यतः ।
नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो
यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११॥
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२॥
योभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४॥
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥१७॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८॥
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद्दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः
मा त्वया समरामहि ॥२०॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२॥

योन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन्देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४॥

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्परि पश्यसि
भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे ॥२५॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम् ॥२६॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥२७॥

भव राजन्यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदेऽस्य मृड ॥२८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥३०॥

नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ॥
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥३१॥

१७: (१) अभ्युदयाय प्रार्थना।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान्भूयासम् ॥ १ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ ६ ॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद्विष्णो
बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते
स्याम तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभि-
स्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा
स्वस्तये तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१०॥
त्वमिन्द्रासि विश्वजित्सर्ववित्पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते
स्याम तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं न पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥११॥
अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि
षंछर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१२॥
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या
त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।

यथेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा
शर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१३॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमाना-
स्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१४॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं
तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१५॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि
विद्वांस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१६॥

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने
पापमानस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१७॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वत-
स्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१८॥

असति सत्प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं
तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥१९॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजो-
ऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०॥
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१॥
उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥
अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान्मह्यं रन्धयन्मा चाहं द्विषते रधं
तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥२४॥
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५॥
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६॥
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७॥
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत्पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०॥

१९ : (१) यज्ञः ।

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

१९ : (२) आपः

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

१९ : (३) जातवेदाः ।

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः संरभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥३॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवाना यज हेडो अग्ने ॥४॥

१९ : (४) आकूतिः ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये
स्वाहा ॥१॥
आकूतिं देवी सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशमेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

१९ : (५) जगतो राजा ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१॥

१९ : (६) जगद्बीजः पुरुषः ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादस्येहाभवत्पुनः ।
तथा व्यक्रामद्विष्वङशनानशने अनु ॥२॥

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥४॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥७॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८॥
विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥९॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०॥
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१२॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥१३॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृत पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥

१६ : (७) नक्षत्राणि ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

१६ : (८) नक्षत्राणि ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥३॥
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्सवितः सुव ॥४॥
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥६॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७॥

१६ : (६) शान्तिः ।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३॥
इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४॥
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि
ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७॥
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः
शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे
शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्ति-
रोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः
सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं
यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव
शमस्तु नः ॥१४॥

१९ : (१०) शान्तिः ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥

१६ : (११) शान्तिः ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः
शं नो अप्याः ॥२॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४॥
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६॥

१९ : (२४) राष्ट्रम् ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥१॥
परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक्क्षत्रेऽधि जागरत् ॥२॥
परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक्श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥३॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥

१९ : (२५) अश्वः ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥१॥

१९ : (२८) दर्भमणिः ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥
द्विषतस्तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभिन्त्संतापयन् ॥२॥
घर्म इवाभितपन्दर्भ द्विषतो नितपन्मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

वृश्च दर्भ सपत्नान्मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान्दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥
कृन्त दर्भ सपत्नान्मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान्दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥
पिंश दर्भ सपत्नान्मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान्दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥
विध्य दर्भ सपत्नान्मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान्दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

१६ : (२६) दर्भमणिः ।

निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥
मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥
मन्थ दर्भ सपत्नान्मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान्दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥
ओष दर्भ सपत्नान्मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान्दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥
दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥

जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वा दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

१९ : (३०) दर्भमणि ।

यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः ॥१॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥३॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥
यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

१९ : (३१) औदुम्बरमणिः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥७॥
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥८॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥९॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सह-
स्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि
यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

१६: (३२) दर्भः ।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥१॥
नास्य केशान्प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥

तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ॥५॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान्दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून्कृधि ॥६॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥७॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद्यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१॥

१६: (३३) दर्भः ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो
मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३॥
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥
दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५॥

१९: (३४) जङ्गिडमणिः ।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥१॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान्विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥२॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥३॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वां जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन्निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥६॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८॥
उग्र इत्ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥९॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ठ्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करद् ॥१०॥

१९: (३५) जङ्गिडः ।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥२॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात्परि मोत भव्याद्दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान्विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५॥

१९ : (३६) शतवारो मणिः ।

शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान्रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन्वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४॥
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वतीनां शतवारेण वारये ॥६॥

१९ : (३७) बलप्राप्तिः ।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४॥

१९ : (४०) मेधा ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥४॥

१९ : (४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१॥

१९ : (४२) ब्रह्मयज्ञः ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा ॥२॥
अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

१९ : (४३) ब्रह्मा ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥४॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥५॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥६॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ॥७॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥८॥

१९ : (४४) भेषज्यम् ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥२॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥३॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥
वीदं मध्यमवासृपद्रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन्नाशयदभिभा इतः ॥७॥
बह्विदं राजन्वरुणानृतमाह पूरुषः ।
तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥९॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१०॥

१९ : (४५) आञ्जनम् ।

ऋणादृणमिव संनयन्कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१॥
यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे
तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे
तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे
तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे
तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे
तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥

१९ : (४६) अस्तृतमणिः ।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि
रक्षतु ॥१॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन्पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वांछत्रून्वि षहस्वास्तृत-
स्त्वाभि रक्षतु ॥२॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४॥
अस्मिन्मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्यस्त्वा पृतन्यादधरः सो
अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद्वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

१९ : (४७) रात्रिः ।

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद्विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे
पारमशीमहि ॥२॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥३॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत्पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥५॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशित ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९॥

१९ : (४८) रात्रिः ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ॥१॥
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।
उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२॥

यत्किं चेदं पतयति यत्किं चेदं सरीसृपम्।
यत्किं च पर्वतायासत्वं तस्मात्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥
सा पश्चात्पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति।
पशून्ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः
पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥

१९ : (४९) रात्रिः।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥
अति विश्वान्यरुहद्गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥ २ ॥
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम्।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३ ॥
सिंहस्य रात्र्युषती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५ ॥
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत्पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वं गोरूपं युवतिर्बिभर्षि।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥ ८ ॥

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणापपायति ॥१०॥

१९ : (५०) रात्रिः

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान्नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यद्द्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान्भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

१९ : (५१) आत्मा ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां
प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

१९ : (५२) कामः ।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ।
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

१९ः (५३) कालः

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥
सप्त चक्रान्वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥
स एव सं भुवनान्याभरत्स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत्परमस्ति तेजः ॥४॥
कालोऽमूं दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥७॥

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत्प्रजापतेः ॥८॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥९॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयंभूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ॥१०॥

१९: (५४) कालः ।

कालादापः समभवन्कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१॥
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा ।
कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत ॥३॥
कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥

१९: (५५) रायस्पोषप्राप्तिः ।

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२॥
सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३॥

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४॥
अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५॥
त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६॥

१९: (५६) दुष्वप्ननाशनम् ।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान्प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥३॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥

१९: (५८) यज्ञः ।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥
उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥२॥

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ॥३॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥४॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

१९ : (५९) यज्ञः ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१॥
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥२॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥३॥

१९ : (६१) पूर्णायुः ।

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥

१९ : (६२) सर्वप्रियत्वम् ।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥१॥

१९ : (६३) आयुर्वर्धनम् ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥

१९ : (६४) दीर्घायुष्ट्वम् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥१॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान्वर्धय प्रजया च धनेन च ॥२॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥३॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥४॥

१९ : (६५) अवनम् ।

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा
दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

१९ : (६६) असुरक्षयणम् ।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः
सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥१॥

१९ : (६७) दीर्घायुष्ट्वम् ।

पश्येम शरदः शतम् ॥१॥ जीवेम शरदः शतम् ॥२॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥३॥ रोहेम शरदः शतम् ॥४॥
पूषेम शरदः शतम् ॥५॥ भवेम शरदः शतम् ॥६॥
भूयेम शरदः शतम् ॥७॥ भूयसीः शरदः शतम् ॥८॥

१९ : (६८) वेदोक्तं कर्म

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१॥

१९ : (६९) आपः ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४॥

१९ : (७०) पूर्णायुः ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

१९ : (७१) वेदमाता ।

मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

१९ : (७२) परमात्मा

स्तुता यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
आयुः कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१॥